International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialresearchjournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2017; Page No. 111-116

स्वतन्त्र भारत के प्रथम विधि मंत्री डॉ0 बी0 आर0 अंबेडकर

राजेश कुमार

शोधार्थी (पीएच.डी.), इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

दूसरे विश्व युद्ध ने भारतीय समाज के संघर्षों तथा अंतिविरोधों को बढ़ा दिया। संकट चरमबिन्दु पर पहुंच गया। जनता की सहमति के बिना भारत को युद्ध में घसीटने का कांग्रेस ने विरोध किया। कांग्रेस सरकारों ने इसी को लेकर त्याग–पत्र दे दिए। अंग्रेजों ने युद्ध के दौरान सता–हस्तांतरण से इंकार कर दिया। जब कांग्रेस सरकारों ने त्याग–पत्र दिए तो मुस्लिम–लीग ने मुक्ति–दिवस मनाया। डॉ0 अंबेडकर भी इस खुशी में शामिल हुए। 1937 के चुनावों के अनुभवों से और दलित वर्गों के सच्चे प्रतिनिधियों को सता से अलग किए जाने से डॉ0 अंबेडकर कांग्रेस से बहुत नाराज हुए थे। मुस्लिम लीग और डॉ0 अंबेडकर दोनों ने उतरदायी राष्ट्रीय सरकार बनाने के कांग्रेसी प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि जब तक अल्पंसख्यकों की समस्या नहीं सुलझा ली जाती तब तक राष्ट्रीय सरकार नहीं बननी चाहिए। ब्रिटिश सरकार ने भारत पर अपना कब्जा बनाए रखने के लिए इस आंतरिक फूट का उपयोग किया। कांग्रेस से नियंत्रित सिविल नाफरमानी आंदोलन शुरू किया। 1942 में कांग्रेस 'करो या मरो' के संघर्ष में कूद पड़ी। डॉ0 अंबेडकर को न तो कांग्रेस की नीति पसंद थी और न उसकी आकांक्षाएं दोनों के बीच बड़ी खाई पैदा हो गई। वाइसराय ने अपनी कार्यकारी परिषद का भारतीयकरण किया और डॉ0 अंबेडकर को इसमें शामिल होने का निमंत्रण दिया। वे बंबई हाईकोर्ट के जज ओर बाद में संघीय न्यायालय के जज बन सकते थे। किंतु डॉ0 अंबेडकर सार्वजनिक जीवन से अलग नहीं होना चाहते थे। उन्होंने कार्यकारी परिषद में शामिल होने का फैसला किया। डॉ0 अंबेडकर डॉ0 अंबेडकर 02 जुलाई 1942 को वाइसराय की कार्यकारिणी में श्रम मंत्री बने। हाल ही में शुरू हुई 'श्रमिक–मालिक–सरकार' की त्रिपक्षीय वार्ता की नीति को डॉ0 अंबेडकर ने मजबूत करने और आगे बढ़ाने की कोशिश की।

डॉ0 अंबेडकर को उसी संविधान की सीमाओं में रहकर काम करना पड़ रहा था जिसे स्वयं उन्होंने 'गुलाम संविधान' कहा था। इस संविधान में वास्तविक सत्ता या उतरदायित्व मंत्रियों को नहीं सौंपा जाता था। युद्ध के प्रारंभ में मजदूर–आंदोलन के जुझारू लोग सरकार के विरूद्ध थे। यद्यपि एम0एन राय के अनुयायी सहयोग कर रहे थे और बदले में 13 हजार रूपये की राशि मासिक अनुदान के रूप में प्राप्त कर रहे थे। उन दिनों यह अच्छी खासी रकम थी। अब साम्यवादी भी अपनी युद्ध विरोधी नीति को बदलने की प्रक्रिया में थे। उनके लिए युद्ध अब जनता को युद्ध बन गया था। इन घटनाओं से राष्ट्रवादी तत्वों में बहुत कटुता पैदा हुई। युद्ध कालीन सहयोग के कारण डॉ0 अंबेडकर के प्रति उनके पूर्वाग्रह और मजबूत हुए। इससे सामाजिक एकता के लक्ष्य को धक्का लगा।

1945 को शिमला सम्मेलन के अवसर पर कांग्रेस के नेताओं को जेलों से रिहा कर दिया गया। किंतु सम्मेलन असफल हुआ। नई मजदूर सरकार ने केंद्रीय विधान सभा और प्रांतीय सभाओं के लिए नये चुनावों की घोषणा की। चुनाव विधिवत हुए। 1945 के केन्द्रीय विधान सभा के चुनावों में मुस्लिम लीग की सभी मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रों में भारी जीत हुई। 1946 के प्रांतीय चुनावों में भी मुस्लिम लीग को ऐसी ही सफलता मिली। इसका एकमात्र अपवाद था उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत लेकिन उस दूरस्थ प्रांत में भी मुस्लिम लीग ने अपनी स्थिति में विगत नौ वर्षों में काफी सुधार किया था। स्मरण रहे कि 1937 में मुस्लिम लीग का वहां कोई अस्तित्व ही नहीं था। इस बार उसने वहां कांग्रेस से ज्यादा सीटें हासिल की थी। जहाँ डॉ0 खान साहब का मंत्रिमंडल बना था।

1945 के आम चुनावों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता थी यरवड़ा करार के अनुसार प्राथमिक चुनावों में अनुसूचित जाति संघ यह सिद्ध करना चाहता था कि अनुसूचित जातियों की बहुसंख्या उनके पीछे है। हरिजनों का प्रतिनिधित्व करने का कांग्रेस का दावा झूठा है। बंबई प्रेसिडेंसी और सी0पी0 बरार के मराठी भाषी क्षेत्रों में डॉ0 अंबेडकर के समर्थकों ने अच्छा शक्ति प्रदर्शन किया किंतु अन्य क्षेत्रों में वे कांग्रेस के पीछे रहे।

रविशंकर शुक्ल ने महाविदर्भ–क्षेत्र में डॉ0 अंबेडकर के अच्छे प्रभाव को स्वीकार किया। नागपुर के मजदूर नेता आर0एस0 रूईकर ने कहा कि ''डॉ0 अंबेडकर के नेतृत्व में मजबूत पार्टी काम कर रही है और सुझाव दिया कि कांग्रेस और अन्य प्रगतिशील ताकतों के बीच समझौता होने से ही कांग्रेस हरिजनों की आरक्षित सीटें मजदूरों की सीट और महिलाओं के निर्वाचन–क्षेत्र की सीट जीत सकती है। रूईकर द्वारा दी गई सहयोग की अपील के प्रति सरदार पटेल ने रूचि दिखाई। पटेल ने पक्का निश्चय कर रखा था कि कोई सीट कांग्रेस के बाहर या कांग्रेस विरोधी उम्मीदवार को न जाए।''[1]

उड़ीसा और अन्य प्रांतों में डॉ0 अंबेडकर की स्थिति संतोषजनक नही थी। उड़ीसा के संबंध में विश्वनाथ दास ने पटेल को लिखा– ''अनुसूचित वर्ग निर्वाचन क्षेत्रों के प्राथमिक चुनावों में गंजम, पुरी और बलसोड जिलों की चार सीटें और कटक जिले की एक सीट निर्विरोध रही। कटक जिले की अन्य सीट पर और सम्बलपुर जिले की सीट पर डॉ0 अंबेडकर की पार्टी से जबरदस्त टक्कर है, उसे अखिल भारतीय पार्टी मदद दे रही है। किंतु इस बारे में चिंता करने की कोई बात नहीं है। हम प्राथमिक चुनावों के लिए तैयार थे और यह दिखाना चाहते थे कि उनकी जातियों में भी प्रतिद्वंद्वी उम्मीदवारों को बहुत कम समर्थन है। यह डॉ0 अंबेडकर के लिए अच्छा सबक होता लेकिन उपर्युक्त पांच जगहों में कोशिश ही नहीं की। अतः इन निर्वाचन क्षेत्रों में प्राथमिक चुनाव हुए ही नहीं।''[2]

20 दिसंबर 1945 को सी0पी0 बरार के भूतपूर्व प्रीमियर रविशंकर शुक्ल ने एक पत्र में पटेल को लिखा– ''मराठी भाषी सी0पी0 बरार में हमें हरिजन उम्मीदवारों के प्राथमिक चुनावों में रुचि नहीं लेनी चाहिए क्योंकि कांग्रेस के उम्मीदवार डॉ0 अंबेडकर, गवई और खांडेकर समूहों के उम्मीदवारों को पराजित नहीं कर पाएंगे, प्राथमिक चुनावों के बाद कई चुने हुए सदस्य कांग्रेस की मदद चाहेंगे, तब हम उनमें से अच्छे लोगों को चुन सकते है।''[3]

डॉ0 अंबेडकर ने इस नीति को लोभ–लालच और घूस की नीति कहा और उनका कहना ठीक भी था। सरदार पटेल ने बिजलाल बियाणी को और भी चतुरतापूर्ण नीति सुझाई। उन्होंने कहा ''हरिजन सीटों से अपने आदमी खड़े करो लेकिन उन्हें कांग्रेस का टिकट मत दो और जब वह जीत जाए तो उसे कांग्रेस में ले लो।''[4] सरदार पटेल डॉ0 अंबेडकर से पराजित होने के कलंक से बचना चाहते थे।

चुनाव परिणाम कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के लिए बहुत संतोषजनक रहे। अन्य सभी दलों का सफाया हो गया था। कांग्रेस ने आंदोलन में जो अनेक कष्ट उठाए थे उसके कारण जनता ने उन्हें समर्थन दिया। उसकी जड़ें और गहरी हो गई थी। मराठी भाषी क्षेत्रों को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में दलित वर्गों में भी कांग्रेस को मजबूत आधार मिला था। डॉ0 अंबेडकर निराशा के अंतिम बिंदु पर पहुंच गए थे। मई 1946 में उन्होंने वाइसराय की परिषद से त्याग–पत्र दे दिया। अंतरिम सरकार ने सितंबर, 1946 में काम संभाला। नई सरकार में डॉ0 अंबेडकर का स्थान जगजीवनराम ने ले लिया। अब डॉ0 अंबेडकर क्या करेंगे? वे अचम्बे में पड़े। ब्रिटिश सरकार ने भी उनकी उपेक्षा की जिसने उन्हें और कटु बना दिया।

सरदार पटेल 1945 में जेल से छूटे तो उन्हें पक्का विश्वास हो गया था कि अब सता हाथ में आने ही वाली है। इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की जीत से उनके विश्वास की पुष्टि हो गई। इस स्थिति में पटेल, जो सत्याग्रह और सीधी कार्रवाई के प्रबल समर्थक थे, बिल्कुल बदल गए। वे कांग्रेस को शासक–शक्ति के रूप में देखने लगे। उन्होंने पैतृक संरक्षण की नीति अपनाकर कहना शुरू किया कि जनता के सभी तबके कांग्रेस की न्याय–भावना पर भरोसा करके चुपचाप रहे किसी प्रकार की शिकायतों की अभिव्यक्ति सत्यागृह, आंदोलन, सिविल नाफरमानी, हड़ताल आदि को घोर अनुशासन भंग माना जाएगा।

सरकार का दृष्टिकोण 1945–46 में संकुचित हुआ और उदार भी हुआ। संकुचित इस बात में कि वे संघर्ष और आंदोलन के रास्ते के खिलाफ हो गए। उदार इस बात में कि वे अपनी पूर्व धारणाओं को बदलने के मूड में थे और राष्ट्र के निर्माण में सबका सहयोग लेने को तैयार थे। लेकिन इसमें उन्होंने रूढ़ीवादी दृष्टि अपनाई। उन्होंने जिन लोगों का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की उनमें डॉ0 अंबेडकर भी थे।

जब 1935–36 के दौरान डॉ0 अंबेडकर ने अपनी धर्म–परिवर्तन की इच्छा व्यक्त की थी तब गांधी के मन के अन्दर कोई तार टूट गया था। डॉ0 अंबेडकर के तीखे और मुहफट भाषणों से भी गांधी का रवैया सख्त हो गया था। 1946 में सरदार पटेल ने (प्रांतों में कांग्रेसी सरकारें बनने के बाद) डॉ0 अंबेडकर से समझौते की पहली कोशिश की तो गांधी का रवैया अस्थिर था। 21 जुलाई 1946 को उन्होंने पटेल को एक पत्र लिखा–

''यह अच्छी बात है कि तुम डॉ0 अंबेडकर से मिले। वह समझौते के लिए तैयार नहीं होंगे। विधानमंडल में 20: सीटें क्यों? मुझे इसमें कुछ गड़बड़ दिखाई देती है इस पर फिर सोच लो।''[5] फिर भी वे नहीं चाहते थे कि ''बातचीत बंद हो जाए। गांधी खुद डॉ0 अंबेडकर से मिलना चाहते थे मगर वे पूना या सेवाग्राम आएं। समाचार पत्रों की रिपोर्ट इसके विपरीत थी जो वास्तव में गलत थी।''[6]

सरदार पटेल ने डॉ0 अंबेडकर से बातचीत जारी रखी। गांधी ने 01 अगस्त 1946 को उनको विस्तृत उत्तर दिया। डॉ0 अंबेडकर से समझौता करने में उन्हें जोखिम दिखाई दिया। डॉ0 अंबेडकर के लिए सत्य सत्य–असत्य, हिंसा और अहिंसा में कोई फर्क नहीं था। डॉ0 अंबेडकर ने स्वयं गांधी को यह बात स्पष्ट शब्दों में बताई थी। संभव है कि डॉ0 अंबेडकर ने इस शैली में बात की हो। गांधी उन शब्दों को संभवत नहीं भूले थे। डॉ0 अंबेडकर की सामाजिक न्याय पर इतनी प्रगाढ़ आस्था थी कि उनके लिए साधन–विवेक गौण बात थी। उन्होंने खुलेआम कहा था– 'जैसा कि पहले कहा जा चुका है। कि वे अनुसूचित जातियों के हितों को देश के हितों से भी ज्यादा महत्व देते हैं। किंतु गांधी की वास्तविक हिचक किसी और कारण से थी।' उन्होंने आगे कहा ''जो आदमी कभी ईसाई कभी मुसलमान या सिख बनने के लिए तैयार हो और जब सुविधा हो पुनः धर्म परिवर्तन करने को तैयार हो उससे बातचीत करते समय बहुत सावधान रहना चाहिए।''[7]

गांधी का धर्म के बारे में रवैया भिन्न था। वे मानते थे कि मनुष्य का प्रेरणा–स्रोत धर्म है। ईश्वर और मनुष्य के बीच मनुष्य और ईश्वर के बीच रिश्ते का नाम धर्म है। डॉ0 अंबेडकर के लिए इस बात का कोई महत्व नहीं था। उनका संबंध इस बात से था कि धर्म इस जीवन में इस धरती पर मानव–संबंधों को किस प्रकार प्रभावित करता है। इस बारे में दोनों के लिए परस्पर भूमिका अकल्पनीय थी।

गांधी ने पटेल से कहा कि वे मुस्लिम लीग के डर से डॉ0 अंबेडकर के साथ बातचीत न करें। इससे दोनों तरह से नुकसान होगा। कोई यह न समझे कि गांधी के मत में हरिजनों के प्रति सहानुभूति का अभाव था। इसलिए इस पत्र का उदाहरण दिया जा रहा है– ''अगर भारत सही मायनों में स्वाधीन हो जाता है तो दलित कुछ हद तक स्वायत बन चुके है और अगर सवर्ण हिंदू अपनी बात के सच्चे होंगे, तो सब ठीक होगा। लेकिन अगर न्यायप्रिय व्यक्तियों की संख्या कम होगी और सत्ता कुछ कट्टर लोगों के हाथ चली जाएगी तो अन्याय होगा ही, चाहे तुम आज कोई समझौता करो किंतु हरिजनों को पीटने वाले, उनकी हत्या करने वाले, उन्हें कुओं से पानी न भरने देने वाले, स्कूलों से उन्हें खदेड़ने वाले और अपने घरों में घूसने देने वाले कौन है? ये कांग्रेस के ही लोग है। इस संबंध में साफ तस्वीर सामने रखना जरूरी है।''[8] पटेल गांधी से तर्क करते रहे। दो दिन बाद 3 अगस्त 1946 को गांधी ने कहा– ''अगर तुम्हें इसमें कोई जोखिम नहीं दिखाई देता है तो मैं इसमें क्या कह सकता हूँ? उनसे समझौता कर लो। मुझे इस विषय में और कुछ नहीं कहना है।''[9]

गांधी को इस बात से प्रसन्नता हुई कि डॉ0 अंबेडकर ने मुस्लिम लीग की तरह संविधान–सभा का बहिष्कार नहीं किया। लेकिन अप्रैल 1947 में भी वे डॉ0 अंबेडकर से समझौता करने को तैयार नहीं थे। अमृत कौर को 29 अप्रैल 1947 को लिखे पत्र में गांधी ने कहा कि– डॉ0 अंबेडकर की पृथक निर्वाचन–मंडल की मांगें स्वीकार नहीं की जा सकती। अधिक से अधिक–आरक्षणों की मांग मानी जा सकती है। इस प्रश्न पर कि ''संयुक्त निर्वाचक–मंडल में सर्वन हिंदुओं का प्रभाव और पूर्वाग्रह हावी रहेगा। गांधी ने कहा कि अंतिम विश्लेषण में सब कुछ दो बातों पर निर्भर करेगा। (1) पार्टी का प्रभाव और (2) शिक्षा और जागरूकता। उन की मुख्य आशंका थी कि हिंदू धर्म अस्त–व्यस्त हो जाएगा। वे इस्लाम, ईसाई धर्म और सिख धर्म को कोई हानि पहुंचाना चाहते थे किंतु हिन्दू धर्म की हत्या की बात वे सोच भी नहीं सकते। अगर डॉ0 अंबेडकर की आपत्तियाँ नहीं मान ली जाए तो हिन्दू धर्म नष्ट हो जाएगा।''[10]

गांधी पुरानी व्यवस्था को बनाए रखना नहीं चाहते थे। वे अब जाति प्रथा का भी विरोध करने लगे थे और अंतर्जातीय विवाहों के जबर्दस्त समर्थक बन गए थे। न केवल उपजातियों, हरिजन–सवर्ण के बीच बल्कि विभिन्न धर्मों के बीच भी। लेकिन वे हिन्दू–धर्म के विघटन को नहीं सहन कर सकते थे। न ही हरिजनों का हिंदू–समाज से अलगाव देख सकते थे।

पटेल और नेहरू अब देश का विभाजन कर और पंजाब तथा बंगाल के टुकटे करके मुस्लिम लीग की समस्या को सुलझाना चाहते थे। यह वही समाधान था ''जिसका दिसंबर 1940 में डॉ0 अंबेडकर ने सुझाव दिया था। अब स्थिति में नाटकीय परिवर्तन हो

चुका था। चूंकि संयुक्त भारत की संभावना खत्म हो चुकी थी अतः डॉ0 अंबेडकर से समझौता करना जरूरी नहीं था। विभाजन के साथ केंद्रीय सभा में डॉ0 अंबेडकर की सदस्यता (वे बंगाल से चुने गए थे) खत्म होने वाली थी। डॉ0 अंबेडकर अब चारों तरफ से निराश थे। पटेल ने पैंतरा बदलकर नये सिरे से कोशिश शुरू की। गांधी अब पटेल से पूरी तरह सहमत थे। जब श्री एम0आर0 जयकर ने संविधान सभा से त्यागपत्र दिया तो पटेल ने एक मौका देखा। जयकर की जगह पर निजलिंगप्पा श्री वी0के0 आर0वी0 राव को लाना चाहते थे। पटेल अड़ गए। उन्होंने बंबई के प्रीमियर को कहा कि डॉ0 अंबेडकर को जीताएं।''[11] अगला काम था डॉ0 अंबेडकर को मंत्रिमंडल में लाना। इस बारे में पटेल और नेहरू ने उदारता दिखाई। नेहरू ने स्वयं डॉ0 अंबेडकर से बात की और डॉ0 अंबेडकर राजी हो गए। लेकिन डॉ0 अंबेडकर ने कहा कि ''विधि–विभाग में उनके करने के लिए कुछ विशेष काम नहीं होगा। नेहरू ने कहा इसकी चिंता मत करो और बहुत से काम वहां होंगे। पटेल ने भी अपने ढंग से डॉ0 अंबेडकर को समझाया।''[12]

उसके बाद टकराव की स्थितियां उत्पन्न न हों, ऐसी बात नहीं है। पटेल मजबूत इच्छा शक्ति वाले थे और डॉ0 अंबेडकर भी झुकना नहीं जानते थे। कई बार इन दोनों में भी झड़प हो जाती थी। 1935 के अधिनियम की धारा 93 और वर्तमान अनुच्छेद–356 पर मतभेद हुआ। कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी और सरदार पटेल के बीच पत्र–व्यवहार हुआ जिसमें पटेल ने बहुत तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। मुंशी ने पटेल को बताया कि ''गृह विभाग ने पुराने अधिनियम की धारा–93 से मेल खाता हुआ अनुच्छेद–188 का संशोधित मसौदा भेजा है। डॉ0 अंबेडकर को इस पर बहुत आपत्ति है और उनके सुझाव के अनुसार मुखर्जी नया प्रारूप तैयार कर रहे है।''[13] मुंशी का विचार था कि इस मामले में पटेल का दिल्ली वापस आने का विचार हो। डॉ0 अंबेडकर के विरोध से पटेल चिढ़ गए उन्होंने गुस्से के साथ मुंशी से पूछा ''संशोधित मसौदे पर डॉ0 अंबेडकर आपत्ति कैसे कर सकते हैं मंत्रिमंडल का निर्णय है कि इस विषय पर गृह–मंत्रालय प्रस्ताव तैयार करेगा और संशोधन पास कराने के लिए कानून–मंत्री को भेजेगा।''[14]

''एक अन्य अवसर पर अपने मंत्रालय की पदोन्नति के संबंध में डॉ0 अंबेडकर ने सीधे गवर्नर जनरल को पत्र लिखे तो पटेल को बुरा लगा।''[15] उन्होंने डॉ0 अंबेडकर से अपनी नाराजगी का इजहार किया। लेकिन कुल मिलाकर डॉ0 अंबेडकर की नेहरू की अपेक्षा पटेल से अच्छी पटती थी। इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों के बीच आदर्शो की समानता थी। आर्थिक और संवैधानिक मामलों में डॉ0 अंबेडकर के विचार पटेल के अधिक निकट थे। डॉ0 अंबेडकर पूंजीवादी के प्रशंसक नहीं थे। उन्हें उनके लिए पैसा कमाने से ज्यादा महत्वपूर्ण किताबें जमा करना था। किंतु डॉ0 अंबेडकर के चिंतन का एक व्यावहारिक पहलू था। इसके कारण वे पटेल के करीब आए। पटेल भी उनके प्रति व्यक्तिगत स्नेह का व्यवहार करते थे जो एक प्रशंसनीय बात थी।

जब सरदार पटेल ने खबर सुनी कि डॉ0 अंबेडकर ने 15 अप्रैल 1948 को एक ब्राह्मण लड़की से शादी की है तो पटेल ने उन्हें पत्र में लिखा मुझे समाचार–पत्रों से पता चला कि आपकी आज शादी हो रही है इस अवसर पर मेरी हार्दिक बधाई तथा सुखी वैवाहिक जीवन की शुभकामना स्वीकार करें। मुझे विश्वास है कि गांधी आज जीवित होते तो आपका आशीर्वाद देते।

डॉ0 अंबेडकर ने लिखा– ''मैं और मेरी पत्नी विवाह के अवसर पर भेजी गई शुभकामनाओं के लिए आपके आभारी है और आपका बहुत–बहुत धन्यवाद प्रकट करते है मैं आपसे सहमत हूँ कि गांधी जीवित होते तो वे आशीर्वाद देते।''[16]

नेहरू में इस तरह की अपनेपन की भावना नहीं थी। नेहरू और उनके विधिमंत्री डॉ0 अंबेडकर के बीच व्यक्तिगत संबंध नहीं बन सके। डॉ0 अंबेडकर को नेहरू की भावुकता और अस्पष्टता पसंद नहीं आई। नेहरू ने मार्क्सवाद और अर्थवाद से डॉ0 अंबेडकर को कोई सहानुभूति नहीं थी। डॉ0 अंबेडकर का विचार था कि– ''नेहरू देश में सामाजिक असमानता तथा सामाजिक अत्याचार की भयानकता को नहीं समझते है। उन्हें संदेश था कि नेहरू ब्राह्मण संस्कारों से मुक्त नहीं है। नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है– उन्हें ब्राह्मणों की कई पीढ़ियों की विरासत मिली है और उसमें इस विरासत का अवचेतन प्रभाव है। ये सभी मतभेद थे। कभी–कभी ये मतभेद ऊपर आ जाते थे। ऐसा ही एक मौका था 25 अप्रैल 1948 में अनुसूचित जाति संघ के लखनऊ अधिवेशन में डॉ0 अंबेडकर का भाषण।''[17]

नेहरू ने तुरंत डॉ0 अंबेडकर को पत्र लिखा कि– ''उन्हें डॉ0 अंबेडकर के भाषण से आश्चर्य एवं दुख हुआ। जिसमें नहेरू और पटेल को हटाने की इच्छा व्यक्त की गई थी और जगजीवनराम को पंचगामी कहा गया था। उन्होंने कहा कि यदि मंत्री इस तरह की भावना रखें और बात करे तो मंत्रिमंडल का सामूहिक उत्तरदायित्व कहां रह जाएगा? प्रधानमंत्री को अपनी दुकान बंद कर लेनी पड़ेगी... इस प्रकार तो सहयोग करना और मिलकर काम करना संभव नहीं है।''[18]

सरदार पटेल से नेहरू ने कहा– ''मैं नहीं समझता, डॉ0 अंबेडकर के इस भाषण के बाद मंत्रिमंडल में कैसे रह सकते है। किंतु पटेल जल्दबाजी में काम करने वाले व्यक्ति नहीं थे। इसके अतिरिक्त वे इस बात के जोरदार समर्थक थे कि डॉ0 अंबेडकर सरकार में रहे। शायद इन्हें उम्मीद थी कि डॉ0 अंबेडकर एक दिन कांग्रेस में शामिल हो जाएंगे।''[19]

डॉ0 अंबेडकर ने अगले दिन ही उत्तर भेजा। उन्होंने प्रसंग को बताते हुए अपनी बात को स्पष्ट किया। उनसे पूछा गया था कि कैबिनेट मिशन के बाद वे चुप क्यों रहें, कांग्रेस की सरकार में वे शामिल क्यों हुए और आगे वे क्या करने वाले है? उन्होंने कहा, मैंने वह वक्तव्य नहीं दिया है जो मेरा बताया जाता है। अखबारों ने शब्दो को तोड़ा–मरोड़ा है और प्रसंग से काटकर प्रस्तुत किया है। समाचार–पत्रों में मेरे साथ कभी न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करते हैं दोनों के बीच पत्रों का और प्रसंगों का आदान–प्रदान हुआ किंतु मामला दब गया।

डॉ0 अंबेडकर ने प्रधानमंत्री को लिखे अपने जवाब की प्रतिलिपि पटेल को भेजी। पटेल उत्तर से पूर्णतया संतुष्ट थे। वे डॉ0 अंबेडकर के उपयोगी सहयोग की जारी रखना चाहते थे। डॉ0 अंबेडकर के लखनऊ भाषण में मुद्दा था कि कांग्रेस नेताओं के साथ सहयोग की उनकी नीति का परिणाम क्या हुआ। डॉ0 अंबेडकर ने सम्मेलन के प्रतिनिधियों को बताया हमने मिल–जुलकर काम करने की नीति अपनाई और यह काफी हद तक सफल रही है। यद्यपि हमें वह सब नहीं मिला जो हम चाहते थे किंतु कुछ हद तक सफलता मिली। हमें विधान–मंडलों और नौकरियों में आरक्षण मिले और हमारी कई मांगें स्वीकार की गई है।

व्यस्क मताधिकार से मेरे विचार में जनसाधारण के हाथ राजनैतिक शक्ति आई है। यदि उत्तर प्रदेश की डेढ़ करोड़ अुनसूचित जातियां और एक करोड़ पिछड़ी जातियां एक लक्ष्य के लिए मिलकर काम करें तो वे विधान मंडल में 50 प्रतिशत सदस्य भेज सकती है। इस तरह राजनैतिक सत्ता हथिया सकती है। ''मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं होगी अगर पिछड़ी जातियां अपना अलग संगठन बनाकर ऊंची जातियों के खिलाफ संयुक्त मोर्चा बनायें। यह अफसोस की बात है कि अनुसूचित जातियां और पिछड़े हुए वर्ग अपनी शक्ति को नहीं पहचान रहे है जिसका परिणाम यह हो रहा कि ऊंची जातियां प्रशासन पर कब्जा किए हुए है।''[20] यह उनकी दीर्घकालिक दृष्टि थी। वर्तमान संदर्भ में डॉ0 अंबेडकर का विचार था।

''हमारी स्थिति ऐसी है कि हमारे आदमियों को प्रशासन तंत्र में रहना ही चाहिए। केवल हानिकारक कानून बनाए जाने का ही डर नहीं है अच्छे कानूनों का परिर्वतन भी बुरे ढंग से हो सकता है। यदि सरकार में ऐसे ही लोग रहेंगे जो परंपरा से अनुसूचित जातियों के हितों के खिलाफ है तो हमारे लिए कोई उम्मीद नहीं बचती।''[21]

सरदार पटेल ने डॉ0 अंबेडकर को लिखा कि लखनऊ के भाषण की रिपोर्ट से उन्हें पहले धक्का लगा किंतु उस रिपोर्ट को सही मानने को उनका मन तैयार नहीं है। मुझे प्रसन्नता है कि मेरी पहली प्रतिक्रिया ठीक थी और समाचार–पत्रों में जो कहा गया है वह भाषण कि– ''अनुसूचित जातियों के हितों की सुरक्षा का सबसे अच्छा तरीका है सहयोग। अनुसूचित जातियों से सम्बंधित अच्छे कानूनों के बनने में कोई अड़चन नहीं है। पटेल ने विश्वास व्यक्त किया कि– 'प्रशासन कर रवैया अधिकाधिक सहानुभूतिपूर्ण' हो रहा है और अनुसूचित जातियों के लोगों के सरकारी सेवाओं में अधिक संख्या में आने से यह सहानुभूति का रवैया बढ़ता जाएगा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि डॉ0 अंबेडकर ने पटेल की भावनाओं की सराहना की।''[22]

मंत्रिमंडल में डॉ0 अंबेडकर पूरी तरह अपने काम में खो गए। संविधान का निर्माण उनका प्रमुख कार्य रहा। संविधान में जो कई प्रगतिशील उपबंध शामिल किए गए उनका बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को जाता है। उनका सबका बड़ा योगदान ही, अनुच्छेद–15 और 16 जिनमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों या सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े सभी वर्गों के हितों को आगे बढ़ाने के लिए विशेष उपबंध किए गए है। विधानमंडलों में ही नहीं, नौकरियों में भी आरक्षणों की व्यवस्था की गई है। लेकिन डॉ0 अंबेडकर को व्यक्तिगत कारणों से भी और नीति के मामलों में भी पूरा संतोष नहीं था। जब संविधान–निर्माण का काम पूरा हो गया तो उन्हें अधिकाधिक लगने लगा कि उनकी शक्ति और प्रतिभा का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। प्रधानमंत्री ने कानून विभाग के अतिरिक्त उन्हें काफी काम देने का वायदा किया था। किंतु नेहरू ने अपना वायदा नहीं निभाया। डॉ0 अंबेडकर को शिकायत थी कि उन्हें मंत्रिमंडल की प्रमुख उप–समितियों से अलग रखा गया है। लेकिन उनके लिए ये अत्यधिक महत्व की बाते नहीं थी।

अनुसूचित जातियों के लिए किए गए उपबंधों पर उन्हें पूर्ण संतोष नहीं था। उन्हें इस बात का अफसोस था कि पिछड़े वर्गों के लिए वे कुछ ठोस सुरक्षा उपाय नहीं कर सके। उन्होंने इस पर सार्वजनिक रूप से खेद प्रकट किया। उन्हें इस बात का दुखः था कि संविधान में किए गए उपबंधों के बावजूद सरकार ने पिछड़े वर्गों के लिए आयोग नियुक्त करने की जरूरत नहीं समझी। कालेलकर–आयोग बहुत देर से नियुक्त किया गया और उसकी रिपोर्ट पर तब तक घूल जमती रही जब तक जनता पार्टी के घोषणा–पत्र में इन सिफारिशों को लागू करने की बात नहीं कही गई। इन सिफारिशों को लागू करने की दिशा में बिहार और उत्तर प्रदेश में जो शुरूआत की गई उससे जनता पार्टी में अंदरूनी विद्रोह उत्पन्न हुआ और उसकी सरकार के लिए संकट उपस्थित हो गया।

डॉ0 अंबेडकर को यह बात पसंद नही आई कि नेहरू मुसलमानों के प्रति तो बहुत चिंता व्यक्त करते है किंतु अनुसूचित जातियों और सामाजिक अत्याचार से पीड़ित जनों के प्रति नेहरू बिल्कुल उदासीन थे। अपनी आत्मकथा में नेहरू ने अस्पृश्यता–निवारण के गांधी के कामों के प्रति तुच्छता प्रकट करते हुए कहा कि यह आज़ादी के मुख्य मुद्दे से बचना है। नेहरू की राय में सामाजिक अन्याय की समाप्ति आर्थिक परिवर्तन का परिणाम थी। डॉ0 अंबेडकर को नेहरू की इस समझ पर भी दुख था लेकिन सबसे ज्यादा पीड़ा इस बात से हुई कि सामाजिक सुधारों तथा हिंदू–कानून के संहिताकरण के प्रति नेहरू का रवैया ढुलमुल रहा। हिंदू कोड़ बिल को 1947 में संसद में रखा गया था। लेकिन हर बार किसी न किसी बहाने से स्थागित किया गया। आंशिक विधेयक को भी अंत में व्यक्त होने दिया गया। यह डॉ0 अंबेडकर के लिए बहुत बड़ा सदमा था। इस विधेयक का विरोध करने वाले रूढ़िवादी बहुत शक्तिशाली थे और नेहरू हर स्तर पर उनके आगे झुक जाते थे। नेहरू इस प्रश्न पर अपनी प्रतिष्ठा को दाव पर नहीं लगाना चाहते थे। इसका डॉ0 अंबेडकर को बहुत अफसोस था। चीन और तिब्बत, कश्मीर और पूर्वी बंगाल तथा विदेश–नीति के अन्य मसलों पर भी उनके मतभेद थे। किन्तु हिंदू कोड बिल के छोड़ देने के सवाल पर डॉ0 अंबेडकर ने नेहरू और कांग्रेस का साथ छोड़ने का निर्णय किया और वे विपक्ष में शामिल हो गए।

हिन्दू कोड बिल के छोड़ दिए जाने का कारण क्या था? इस बिल का प्रखर विरोध करने वाले थे डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद। संविधान के निर्माण के लिए संविधान निर्माता समिति बनी थी। उसे हिन्दू–धर्मशास्त्र में इतना बड़ा मूलभूत परिवर्तन करने का अधिकार जनता से नहीं मिला था। इस प्रकार का तर्क करते हुए एक टिप्पणी उन्होंने वल्लभभाई के पास भेजी थी सरदार पटेल ने राजेन्द्र प्रसाद को लिखा– ''मुझे नहीं लगता कि आप के सापेक्षों में कुछ दम है। जो संस्था सारे देश के लिए संविधान बना सकती है वह कानून नहीं बना सकती, यह कैसे कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मंत्रिमंडल ने विधेयक को मान्यता दी है। इसलिए इस बात पर खुला वक्तव्य देना आपके लिए उचित नहीं है।''[23]

सरदार पटेल की मृत्यु के बाद राजेन्द्र प्रसाद ने अपने विरोध की धार और तेज कर दी। उनके विरोध पर चर्चा बाहर भी होने लगी। संसद सदस्यों से राजेन्द्र प्रसाद ने स्वयं चर्चा की। दो–तिहाई संसद सदस्य विधेयक के विरुद्ध थे। वैयक्तिक कानूनों में सरकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, अपनी इस धारणा के कारण भूतपूर्व मुस्लिम लीग के लोग भी विधेयक के विरोध में थे। कुछ मंत्रियों की सहानुभूति भी राजेन्द्र बाबू को मिली इससे विधेयक स्थागित होने लगा और विरोध का आवेग कम होने के स्थान पर बढ़ता गया। प्रत्यक्ष में केवल चार धाराएँ पास हो सकी। चौथी धारा पर सात दिन बहस चली। गोपाल स्वामी आयगर ने नेहरू को इस तरह का संकेत दिया कि वे ज्यादा जिद्द करेंगे तो उन्हें प्रधानमंत्री पद छोड़ना पड़ सकता है। नेहरू पीछे हटे लेकिन यह पीछे हटना स्थायी नहीं था। नई लोकसभा में 'हिन्दू कोड बिल' टुकड़ों में अनेक विधेयकों के रूप में मंजूर हुआ।

डॉ0 अंबेडकर की महत्वाकांक्षा थी कि पुराने 'मनुस्मृति शास्त्र' की जगह बी0एन0 राव आदि द्वारा तैयार किया तथा कानून मंत्री के रूप में स्वयं उनके द्वारा घोषित नया धर्मशास्त्र स्थापित हो। उसमें विफल होने से उनका निराश होना स्वाभाविक था। तथापि इस विधेयक की बहस के दौरान 6 फरवरी 1951 को उन्होंने अंतरिम संसद में जो जोरदार भाषण दिया था, वह बहुत प्रेरणादायक था। उसका संक्षिप्त विवरण आज भी मार्गदर्शक है। उसका पहला मुद्दा था, संविधान के अनुसार वैयक्तित्व कानूनों में संशोधन करने का सरकार को पूरा अधिकार है। उन्होंने सवाल किया कि जब पहले के विधिमंडल जो जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे, ऐसा कर सकते थे जो स्वतंत्र भारत के प्रतिनिधि विधि–मंडल ऐसा क्यों नहीं कर सकते?

डॉ0 अंबेडकर ने हिन्दू कोड बिल के लिए हिंदू शब्द की व्यापक व्याख्या की थी। इस समय सिक्ख कहने लगे है कि संविधान के अनुच्छेद–25 को रद्द किया जाए क्योंकि हमारे वैयक्तिक कानून अलग होने चाहिए। हिंदू शब्द का कानून के अनुसार व्याख्या करते हुए डॉ0 अंबेडकर ने जो युक्तियां प्रस्तुत की थीं वे अकाट्य है। अज्ञान में डूबे आज के शासक पक्ष तथा विपक्ष को इसका मनन करना चाहिए। भारत में वैदिक, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि धर्म–पंथ

उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने लिए स्वतंत्र कानून अथवा धर्मशास्त्र की रचना नहीं की। कानून की नई संहिता नहीं बनाई। न बुद्ध, न महावीर ने। अत्यंत बुद्धिमानी सिख सदस्य सरदार हुकुमसिंह की तरफ (जो बाद में लोक सभा के अध्यक्ष बने) देखकर चुनौती के रूप में डॉ0 अंबेडकर ने कहा– 'मेरी जानकारी के अनुसार सिक्खों के दस गुरूओं ने भी कोई नई संहिता या स्मृति तैयार नहीं की। 1830 के बाद प्रीवी कौंसिल द्वारा भारत का संविधान तैयार करने तक सिक्खों को कानून की दृष्टि से हिंदू ही माना जाता रहा है।' संविधान के अनुच्छेद–25 में और नई बात क्या है? प्रीवी कौंसिल की व्याख्या को ही अपनाया है। डॉ0 अंबेडकर की आकट्य युक्तियों का प्रतिवाद करने के लिए अंतरिम संसद में एक भी सदस्य की हिम्मत नहीं हुई। उल्टे सरदार हुकुमसिंह ने कहा कि कानून की दृष्टि से निस्संदेह यही स्थिति है।

क्या कानून सिर्फ हिंदुओं के लिए है? सबके लिए क्यों नहीं? इस प्रकार की आपत्ति करने वाले को मुहतोड़ जवाब देते हुए डॉ0 अंबेडकर ने कहा– ''इस आपत्ति में शंकाएँ नहीं है। इस विधेयक के निर्माण ये चार पांच वर्ष खर्च हो चुके है। सभी नागरिकों के लिए समान कानून का प्रश्न उठाने का अभिप्राय हैं हिंदू धर्मशास्त्र में परिवर्तन के प्रश्न को टालना। इस तरह के छन्द युक्तिवाद पर इसलिए जोर दिया जा रहा है कि आवश्यक सुधार का काम आगे न बढ़े।''[24] डॉ0 अंबेडकर के प्रतिपादन का यह तीसरा मुद्दा था।

मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देने के बाद डॉ0 अंबेडकर को अपने भावी कार्यक्रम के बारे में निश्चत करना था। कानून मंत्री की हैसियत से उन्होंने संसद में दो विधेयक प्रस्तुत किए थे जिनके अंतर्गत स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के लिए आवश्यक व्यवस्था–तंत्र का निर्माण किया गया। संविधान में जिस व्यस्क मताधिकार का प्रावधान किया गया था चुनावों के संचालन के लिए स्वतंत्र और स्वायत प्राधिकरण का निर्माण में सहायक था। मतदाता सूचियों के निर्माण और निर्वाचन–क्षेत्रों के सीमा–निर्धारण का काम जोरों पर चल रहा था। चुनाव आयोग ने चुनाव–चिह्नों की योजना बनाई थी ताकि अशिक्षित जनता उम्मीदवारों और पार्टियों की पहचान कर सके। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के प्रतिनिधित्व के लिए अधिकांश राज्यों में आरक्षित सीटों की व्यवस्था की। चूंकि मतदाता सर्वमान्य था और वोट संरचनात्मक नहीं, वितरणात्मक था अनुसूचित जातिसंघ के लिए चुनाव समझौता करना आवश्यक हो गया।

डॉ0 अंबेडकर साम्यवादी विचारधारा के खिलाफ थे। उन्हें सर्वहारा की तानाशाही के सिद्धांत पर आस्था नहीं थी। अपनी मान्यताओं पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने अमरीकी गृहयुद्ध के महान नेता द्वारा की गई लोकतंत्र की व्याख्या का उल्लेख किया और कहा– ''इब्राहिम लिंकन ने... लोकतंत्र की परिभाषा करते हुए कहा था कि यह जनता द्वारा, जनता के लिए चुनी गई, जनता की सरकार है। लोकतंत्र की और भी परिभाषाएं हो सकती है। मैं स्वयं लोकतंत्र को एक अलग ढंग से परिभाषित करता हूँ– अधिक मूर्तरूप में। मैं समझता हूँ कि लोकतंत्र ऐसी सरकार है जिसें जनता के सामाजिक और आर्थिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन रक्तहीन तरीके से किए जा सकें। लोकतंत्र की मेरी परिभाषा यही है।''[25]

डॉ0 अंबेडकर ने 1951 में कांग्रेस सरकार से रिश्ता तोड़ लिया। आगामी चुनावों में वे कांग्रेस के साथ गठबंधन नहीं कर सकते थे। साम्यवादियों के साथ उनके मतभेद मूलभूत थे। एक ही पार्टी थी जिसके साथ वे अखिल भारतीय स्तर पर चुनाव समझौता कर सकते थे। यह थी समाजवादी पार्टी। उन्होंने समाजवादी पार्टी की बंबई शाखा के नेताओं से बातचीत की। दोनों पार्टियों के बीच जो दूरी थी वह कम हुई और समझौते के लिए दोनों पक्ष राज़ी हो गए। 07 नवंबर 1951 को डॉ0 अंबेडकर पटना में जयप्रकाश नारायण से मिले।

समाजवादी नेताओं का विचार था कि डॉ0 अंबेडकर की पार्टी अनुसूचित जाति संघ और यशपाल सिंह की झारखंड पार्टी समाजवादी की नीतियों और कार्यक्रमों से सर्वाधिक निकट है। पार्टी ने हरिजन और आदिवासियों का प्रतिनिधित्व करने वाली इन दोनों पार्टियों से समझौता करने का निर्णय किया। मेरी राय में यह कदम उचित था।

डॉ0 अंबेडकर 'कांग्रेस के मुकाबले में एक केंद्रीय या संघीय आधार पर एक पार्टी बनाना चाहते थे'। किंतु समयाभाव के कारण इस प्रस्ताव पर अमल नहीं हो सका। इसका विकल्प था कि अनुसूचित जाति–संघ की शाखाओं को अन्य पार्टियों से चुनाव समझौता करने की स्वतंत्रता दी जाए। बंबई से मराठी भाषी इलाकों में एक और पार्टी थी जो साम्यवादी अनुसूचित जाति संघ और झारखंड के गठबंधन के साथ मिल सकती थी। इसका नाम था 'शेतकरी कामगार पार्टी'। वास्तव में समाजवादियों ने इस पार्टी के साथ पहले ही समझौता कर रखा था। किंतु दुर्भाग्य से उस पार्टी के कुछ लोगों ने नये कम्युनिस्ट इंटरनेशनल सेंटर (कॉमिन फार्म) के विचारों को लादना चाहा और इससे गांठ पड़ गई। इस कृत्रिम अलगांव ने समाजवादी पार्टी, डॉ0 अंबेडकर के संघ और शेतकरी कामगार पार्टी सबको नुकसान पहुँचाया। परिणाम स्वरूप ये सभी पार्टियाँ 1951–52 के चुनावों में बुरी तरह से हार गई।

चुनाव–प्रचार के दौरान डॉ0 अंबेडकर ने नेहरू से अपील की कि वे रूढ़िवादी गठबंधन में शामिल हो जाएं। उन्होंने नेहरू की इस बात के लिए आलोचना की कि ''वे सपनों की दुनिया में रह रहे है। उन्होंने भारत की कमजोर अर्थव्यवस्था और बाहर के खतरे का जिक्र किया। चीन हमारे दरवाजे पर है और हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते। उन्होंने भ्रष्टाचार के बारे में नेहरू की टिप्पणी पर भी खेद प्रकट किया जिसमें कहा गया था कि भारत में भ्रष्टाचार इतना ज्यादा नहीं है। कि उनकी तरफ बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाए।''[26]

समाजवादियों और डॉ0 अंबेडकर की पार्टी की सभाएं बंबई में बहुत बड़ी होती थी। इससे उम्मीदें बहुत बढ़ गई। लेकिन जब डॉ0 अंबेडकर और अशोक मेहता दोनों थोड़े से वोटों से हार गए। साम्यवादी उम्मीदवार श्रीमद् अमृत डांगे ने अपने समर्थकों से कहा था कि वे अपनी दूसरी वोट को नष्ट कर दें। इससे कांग्रेस समर्थित अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों की जीत और डॉ0 अंबेडकर की हार निश्चित हो गई।

चुनाव परिणाम समाजवादी अनुसूचित जाति झारखंड–गठबंधन के लिए भयानक संकट सिद्ध हुआ। कुछ समाजवादी नेता हतोत्साहित हो गए। अशोक मेहता कांग्रेस से सहयोग की बात करने लगे। जयप्रकाश नारायण सर्वोदय की ओर उत्कृष्ठ हुए। डॉ0 अंबेडकर को समाजवादी दल और शेतकरी कामगार पार्टी के समर्थन से राज्य सभा के लिए चुन लिया गया। किंतु चुनाव की हार ने गठबंधन और संयुक्त पार्टी के प्रस्ताव को खटाई में डाल दिया।

लेकिन डॉ0 अंबेडकर इस बंधन को तोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने दोनों पार्टियों के विलय का प्रस्ताव भी किया था। उन्होंने एक विकल्प अन्य सुझाया था कि विभिन्न राजनैतिक पार्टियों का एक संघीय संगठन बनाया जाए जिसमें सभी पार्टियां प्रमुख नीतियों की पहल संघीय पार्टी को सौंप दें और विशिष्ट मामलों में पहल अपने पास बनाए रखें। अशोक मेहता ने इस पर डॉ0 अंबेडकर से विचार विमर्श किया था। उनका कहना था कि ''इस प्रस्ताव में काफी संभावनाएं है और इसे राजनैतिक जीवन की नई प्रणाली विकसित हो सकती है।''[27]

''गांधीवादी विचारों की प्रबल समर्थक किसान मजदूर प्रजा पार्टी से जब समाजवादी दल का विलय हुआ तो समाजवादी पार्टी और अनुसूचित जाति के गठबंधन में दरार आ गई। डॉ0 अंबेडकर किसान मजदूर प्रजा पार्टी के नेताओं को पसंद नहीं करते थे

क्योंकि इनमें से कुछ ने हिंदू कोड बिल का विरोध किया था। उन्हें साम्यवादियों को सावधान किया कि इस विलय से अनुसूचित जाति के साथ रिश्ते तो प्रभावित होंगे ही, समाजवादियों को भी बहुत नुकसान होगा।''[28]

भंडारा (मध्यप्रदेश) में 1954 के उपचुनाव में भी डॉ0 अंबेडकर और अशोक मेहता उम्मीदवार थे। अशोक मेहता तो जीत गए किंतु डॉ0 अंबेडकर हार गए। डॉ0 अंबेडकर को इससे बहुत निराशा हुई। सर्वण हिंदू मतदाताओं के रूख से उन्हें कष्ट हुआ।

1955–56 में पश्चिम भारत में राज्यों के पुनर्गठन के सवाल को लेकर तूफान खड़ा हो गया। इस बीच समाजवादियों के दो हिस्से हो गये और भाषा के साल ने उनकी एकता को कमजोर किया। अब तक डॉ0 अंबेडकर ने अनुसूचित जाति संघ जैसे समिति संगठन की निरर्थकता को देख लिया था। वे चाहते थे कि कांग्रेस के विकल्प के रूप में व्यापक आधार पर एक प्रगतिशील विपक्षी पार्टी बने। डॉ0 अंबेडकर और डॉ0 रामनोहर लोहिया के बीच इस सिलसिले में बात हुई। लोहिया मौलिक विचारक थे उन्होंने भारत की सामाजिक समस्या पर गहन चिंतन किया था और उनके विचार जाति और सामाजिक समता के संबंध में डॉ0 अंबेडकर से बहुत मिलते थे। किंतु इससे पहले कि बातचीत के कुछ निश्चित परिणाम निकलते डॉ0 अंबेडकर का 06 दिसम्बर 1956 को निधन हो गया। जो इस मसौदे के लिए दुखद समाचार था।

संदर्भ

1. Baba Saheb Dr. Ambedkar: Writing & speeches. 2:347-48.
2. Durgadas (Ed.) Sardar Patel of Correspondance. 1945-50, Ahamdabad. 1982; 2:327
3. Ibid, 340.
4. Ibid, 344.
5. The Collective Works of Mahatama Gandhi. 85, 35.
6. Ibid, 35.
7. Ibid. 102.
8. Ibid, 102.
9. Ibid, 120.
10. Ibid, 315.
11. Sardar Patel, Correspondence, Ahamdabad, 5:149.
12. Ibid, Ahamdabad, 4:436.
13. Ibid, 536.
14. Ibid, Ahamdabad, 8:288-30.
15. Ibid, 115.
16. Ibid, Ahamdabad, 6:302.
17. Ibid, 302-03.
18. Ibid, Ahamdabad, 9:328-29.
19. Ibid, 328-29s
20. Thus Spok Ambedkar, Jallandar, 1977; 1:83.
21. Ibid, 84
22. Sardar Patel, Correspondence, Ahamdabad. 1973; 6:327-37.
23. Sardar Patel, Correspondence, Ahamdabad, 9:110-11.
24. The Constitute Assembly Legistative Debeate, 06/02/1951 or 20/09/1951
25. Thus Spok Ambedkar, Jallandar. 1977; 1:61
26. Source Meterial on Dr. Babasaheb Ambedkar, 1:275.
27. Ibid, 1:400.
28. Source Meterial Dr. Babasaheb Ambedkar, 1:400.